प्रवचन नं.७ गाथा-१ ता. १३-६-७८ मंगलवार जेठ सुद-७ सं. २५०४

समयसार की पहली गाथा चलती है, यहाँ तक आया है। `पंचमगति मोक्ष को प्राप्त किया है' यहाँ तक आये है। अब यह गति कैसी है, यह बात चलती है। पहले विशेषण आये हैं, ध्रुव अचल और अनुपम उसके विशेषण हैं। अब स्पष्ट करते हैं। अपनी पर्याय में अंतर स्थापित करके... अनंत अनंत सिद्धों को स्थापित करके... वोच्छामि कहा है ना? कहेंगे तो, किसी को कहेगें न ? वोच्छामि कहा है न ? कहेंगे तो उन्हें भी मैं कहूँगा, उनमें भी सिद्धों को स्थापित करता हूँ।

ऐसे सिद्धों का ध्यान करके, अपने स्वरूप को ध्याते हैं, और जिससे सिद्धपद को पाते हैं। उसे यहाँ सिद्ध गति कहते हैं, यह सिद्ध गति कैसी है ? यह कहते हैं, ***कैसी है पंचमगति ? स्वभावभावरूप है, स्वभावरूप है - ऐसा नहीं कहा क्योंकि पर्याय है ! सिद्ध की पर्याय है इसलिये स्वभावभावरूप है,*** `**स्वभाव भाव भूततया**' - ऐसा शब्द है न ! मूल संस्कृत शब्द - ऐसा है - **स्वभाव भाव भूततयां,** स्वभावभावरूप-भूत का अर्थ रूप है। आहाहा ! सिद्ध गति को प्राप्त ऐसे अनंत सिद्धों को हमारी और तुम्हारी आत्मा में स्थापित करता हूँ। आहाहा ! वह सिद्ध कैसे हैं ? कि पंचमगति को प्राप्त हुये हैं। आहाहाहा ! स्वभावभावरूप होगये हैं। स्वभाव तो त्रिकाल है परंतु यहाँ तो स्वभावभाव पर्यायरूप दशा होती है। सिद्ध भगवान अपनी पर्याय में स्वभावभावरूप होते हैं। स्वभावभावरूप है। वस्तु तो स्वभाव है भगवानआत्मा सिद्ध स्वरूप ही है, इसलिये तो पर्याय में अनंत सिद्धों को स्थापित करके कहेंगे। तब कहनेवाले को और सुननेवाले को, दोनों (की पर्याय) में स्थापित करके - ऐसा कहा। आहाहा ! और वह गति कैसी प्राप्त करते हैं ? कि स्वभावभावरूप (अर्थात्) जैसा उसका स्वभाव है वैसी ही उनकी दशा में, स्वभावभाव रूप दशा प्राप्त हुये हैं। स्वभावभाव अर्थात उसकी पर्याय बताते हैं। स्वभाव त्रिकाल, वर्तमान (भी) उनका स्वभावभावरूप हो गया है। आहाहा ! पण्डितजी ! आहाहा !

जैसा उसका स्वभाव था ऐसी ही दशा पर्याय में उसके होने योग्य भाव में, स्वभावभावरूप दशा हुई है। आहाहा ! इसलिये उसे ध्रुव कहते हैं। ***पर्याय को ध्रुव कहते हैं, ध्रुव स्वभाव जो था, स्वभाव ध्रुव था उसमें से पर्याय स्वभावभावरूप परिणमी इसलिए उसे ही ध्रुव कहते हैं।*** आहाहा ! (श्रोता :-) (दो ध्रुव हुए त्रिकाली ध्रुव और एक वर्तमान ध्रुव) हाँ, ध्रुव यह यहाँ पर्याय है, कारण तो - ऐसा कहना है कि स्वभावभावरूप दशा हो गई, अब उसे वहाँ से पलटना नहीं, ध्रुव हो गयी। आहाहा ! चार गतियों

में तो गति बदल जाती है, एक गतिमें से दूसरी गति यह तो ध्रुव (पर्याया) आहाहा ! देखो यह कहते हैं।

स्वभावभावरूप है इसलिये, इसलिये कि स्वभावभावरूप है, `स्वभावभाव भूततया ध्रुवत्वम्' अर्थात इसप्रकार ध्रुवपने को अवलम्बता है। संस्कृत है न ? `स्वभावभाव भूततया ध्रुवत्वम्' आहाहा ! ... - ऐसा कहकर `स्वभाव भी जिसका था वह, वह नहीं था - ऐसा नहीं, वह आया तो वह कहीं बाहरमें से कोई चीज नहीं आयी।' आहाहा ! उसका वह स्वभावभाव था, वह स्वभावभावरूप पर्याय में भाव हो गया। आहाहा ! स्वभावभाव तो त्रिकाल था, उसमें से वर्तमान पर्याय में उस भाव की स्थितिरूप, भावना स्वरूप में परिणमित हो गई। आहाहा ! उसे यहाँ सिद्धगति कहा जाता है। `इणमो' शब्द है न `इणमो'। `इणमो' शब्द वस्तु को नहीं, कहने को लागू होता है। `**वोच्छामि समय पाहुड़म् इणमो**' `यह' ओ हो - ऐसा है न ? इणम् ओ इणम् ओ, इदम् `ओ' `म' और आ गया इदम में `ओ' भिन्न हो गया। यह **अहो** - ऐसा कहकर कहते हैं। आहाहा ! - ऐसा समयसार में कहेंगे यह अहो, श्रुतकेवली भणियम्, आहाहा। उसे कहेंगे। आहाहा ! क्या कहा ? इणमो शब्द है न ? इणमों का अर्थ `इदम्' और `ओ' उसमें से भी भिन्न हुआ `**ओहो**'... यह। **ओहो** ! श्रुतकेवली केवली भणियं, ऐसे समयसार को मैं कहूँगा। मैं तो हूँ परंतु जिसे सुनना है उससे कहूँगा अर्थात उन जीवों की भी पर्याय में सिद्ध दशा को स्थापित किया है (वह सभी सिद्ध (दशा) प्राप्त होंगे) वह पायेंगे ही यहाँ तो एक ही बात है न ! यहाँ दूसरी बात है ही नहीं। आहाहा ! किसी को कम समय लगे किसी को अधिक लगे। आहाहा ! क्योंकि यह (**आ**)**अहो** ! आश्चर्य भरी बात बतलाते हैं। हे ! भव्य - ऐसा कहा न ? आहाहा ! वहाँ से - ऐसा कहना (प्रारंभ किया) अहो ! भव्य जीवो - ऐसा कहा। गाथार्थ में कहा गाथार्थ में - ऐसा कहा है, अहो है ? अहो ! शब्द है, अहो ! शब्द लिखा है, आहा ! अहो शब्द है न ? मूल पाठ में, शब्दार्थ में है। वह, अहो कह कर तो मैं श्रुतकेवली द्वारा कहा हुआ, केवली द्वारा कहा हुआ और श्रुत केवली द्वारा कहा हुआ... भाई अहो ! यह कहने का अवसर आया न ? सुननेवाले को भी सुनने में आया, आहाहा ! - ऐसा कहकर अहो आश्चर्य बताते हैं ! तीनलोक के नाथ केवली ने कहा (वही) कहेंगे और श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ कहेंगे। आहाहा ! - ऐसा समय कब मिलेगा - ऐसा कहते हैं। साक्षात् भगवानने (सीमंधर प्रभुने) कहा। वह हमने सुना और श्रुतकेवली के पास चर्चा (समाधान) किया, वह मैं कहूँगा, आहाहा ! इसमें से इतना इतिहास निकलता है ? कि वह भगवान के पास गये थे कि नहीं ? वह स्वयं - ऐसा क्यों कहें ? परंतु इसमें यह आ जाता है। ***भगवान कहते हैं वह***

कहेंगे, उसका अर्थ ही यह हो गया कि भगवान से सुना है। आहाहा ! और श्रुत केवलियों के पास चर्चा की है। ऐसी समयसार की स्थिती जो आत्मा की, उसे मैं कहूँगा। उसमें कोई टीका (निन्दा) करते हैं कि 'मैं कहूँगा' - ऐसा तो आया। इसमें मैं कहूँगा, भाषा में क्या आयेगा ? वैसे तो वाणी है वह पर है, फिर भी कहूँगा- ऐसा फिर क्यों आया पुनः वहाँ, लेकिन भाषा में दूसरा क्या आये ? कहेंगे, वाणी निकलेगी वाणी के योग से, परंतु हमारा जो ज्ञानभाव है उसके अनुसार वाणी होगी। भाषा, भाषा के कारण है। परंतु जैसे वाणी सर्वज्ञ अनुसारिणी है, दूसरे श्लोक में आया न। जैसे परमात्मा की वाणी सर्वज्ञ अनुसारिणी है उसका अर्थ अनुभवशीली किया है, केवलज्ञान के आधार से कहेंगे। यह मैंने भगवान के पास सुना है, श्रुतकेवली के पास से जाना है, उसको अनुसरण करती हुयी वाणी निकलेगी। आहाहाहा ! समझ में आया ? एक-एक शब्द में बहुत गहराई भरी है। ओहोहो ! कुछ तो कल कही थी। पहले शब्दमें से, आहाहा ! यहाँ तो ध्रुवमें से इतना लेना (समझे)। यह (सिद्ध) गति स्वभावभाव से ही ध्रुवपने का अवलम्बन करती है अर्थात ध्रुवरूप रहती है 'चारों गतियाँ' पर-निमित्त से होने के कारण ध्रुव नहीं है। एकरूप रहती नहीं है। गति परिवर्तनशील है सर्वार्थसिद्ध की गति हो फिर भी पलटजाती है, शीघ्रता से मनुष्य हो जाता है। आहाहा ! यह पाण्डव, पांच पाण्डव में नकुल सहदेव को (- ऐसा विचार आया) (भाईयों के प्रति) साधर्मी हैं और मुनि हैं, छठवे-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं और - ऐसा उपसर्ग आया, उसमें तीनों कुछ विकल्प किये बिना मोक्ष पधारे, परंतु दो मुनियों को थोड़ा विकल्प आया। अरेरे ! कैसा तो होगा मुनियों को ? आहाहा ! वहाँ गति, सर्वार्थसिद्धि की हो गई, केवलज्ञान रूक गया, यह शुभभाव, शुभभाव में, दो भव बढ़ गये। आहाहा ! यह तो सिद्ध गति जिसमें दूसरी गति ही नहीं। पर निमित्त से हुयी गति तो पलट जाती है, यह तो स्वभाव से हुयी गति ध्रुव, अब यह पलटे नहीं आहाहा ! सिद्धपनमें से पुनः अवतार धारण करें ? (यह नहीं) अन्य (मतवाले) - ऐसा कहते हैं कि भक्तोंपर संकट आये, राक्षसों से (यदि भगवान के भक्तों पर संकट आयें)... परंतु अंदर संकट कहां है ? कहा जाता है कि उपसर्ग आता है, इसलिये कहलाता है, उपसर्ग होता है। वह क्या है ? जानते हैं। जानते हैं और आनंद से सहन करते हैं, हठ और दुःख से सहन नहीं करते। आहाहा ! परिसह उपसर्ग में तो उग्र जोर है, अंतर पुरुषार्थ का, अतीन्द्रिय आनंद के जोर से पुरुषार्थ (प्रारंभ करते) आनंद आनंद आनंद आनंद दुनियाँ उन्हें संयोग से देखे, (वह तो) अंदर में आनंद की लहरों को अनुभवते हैं। आहाहा !

यहाँ ऐसी पंचमगति ! चारों गतियाँ तो दूसरे में (बदलती) हैं ध्रुव नहीं, चारों

गतियाँ तो विनाशीक हैं। `ध्रुव विशेषण से पंचमगति में इस विनाशीकता का निराकरण हुआ।' अब यह गति पलटेगी ही नहीं। आहाहा ! मोक्ष होने के बाद भी अवतार धारण करे - इस बात को गलत ठहराया। जिसका संसार जल गया, जो चना सिक गया वह चना उगे किस प्रकार ? अरे ! ***चना जैसी वस्तु भी सिकने के बाद उगे नहीं तो यह तो अज्ञान और राग-द्वेष को जला करके आत्मा की ध्रुव दशा प्रगट की है। आहाहा*** ! यह वहाँ से विनाश नहीं पायेगी (नष्ट नहीं होगी) इसलिये उसे ध्रुव कहते है।

और वह गति कैसी है ? अनादिकाल से परभाव के निमित्त से होता पर में भ्रमण, उसकी विश्रांति... अचल है न ? अचल, अगाढ, अचलपने को पाते हैं, अब अचलता पाकर, मिली तो मिली वह अब बदले नहीं। आहाहा ! ध्रुव कहा, अब अचल कहा। आहाहा ! चलायमान न हो, अब ऐसी दशा को पाया ऐसे अनंत सिद्धों को हमने पर्याय में स्थापित किया, वह ऐसे सिद्ध हैं - ऐसा कहते हैं। सिद्धों की पहचान कराते हैं। आहाहा ! उनका पंचमगति में अभाव हुआ। `चार गतियों में पर-निमित्त से जो भ्रमण होता है उसका यहाँ पंचम गति में' अचल कह कर चले नहीं - ऐसा कहकर `व्यवच्छेद किया' ***ध्रुव में तो अस्ति को स्थापित किया यह अचल जो अब चले नहीं वहाँ से पलटे नहीं, इसप्रकार - ऐसा स्थापित किया, अचलपने*** को पाया है, दो शब्द हुये।

तीसरा, फिर वह कैसी है ? ध्रुवम् अचलम् अनुपम्... अब अनुपम की व्याख्या करते हैं। **जगत में जो समस्त उपमायोग्य पदार्थ हैं, उनसे विलक्षण अद्‌भुत माहात्म्य होने से।** आहाहा ! `उन्हें किसीकी उपमा मिल सकती नहीं।' सिद्ध कैसे है ? कि सिद्ध जैसे। उनके जैसे वही। अर्थात सिद्ध जैसे सिद्ध। उन्हें दूसरी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। आहाहा ! उपमा देने योग्य पदार्थ है उनसे अद्‌भुत विलक्षण माहात्म्य होने से उन्हें किसी की उपमा मिल नहीं सकती `इस विशेषण से चारों गतियों में जो परस्पर कथंचित साम्यता दिखती है'... चक्रवर्ती का सुख, इन्द्र जैसा इन्द्र का सुख चक्रवर्ती जैसा अंश भी समान मिलता है, परंतु यहाँ (सिद्धों में) कुछ मिले - ऐसा नहीं। सिद्ध गति को कोई उपमा मिल सके - ऐसा नहीं है। आहाहा ! परस्पर समानपना कथंचित चारों गतियों में मिल जाती है, `उसका यहाँ पंचम गति में विच्छेद हुआ।'

`और वह कैसी है ?' यह विशेष कहा... तीन तो पाठ में (गाथा में) है। ध्रुव, अचल, अनुपम अब सिद्ध गति है न। गति वह अपवर्ग है - ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा ! त्रिवर्ग से भिन्न अपवर्ग है, है ? देखो, आहाहा ! अपवर्ग उसका नाम है।

`अपवर्ग क्यों कहना' कि धर्म अर्थात पुण्य, अर्थ अर्थात लक्ष्मी, काम अर्थात विषय यह त्रिवर्ग कहलाता है, आहाहा ! मोक्षगति वह इन वर्गों में नहीं होने से, मोक्ष गति पुण्य में नहीं, पैसा में नहीं और विषयों में नहीं, तीनों वर्ग से भिन्न अपवर्ग है, वर्ग बिना की है। वर्ग तीन है पुण्य, पाप अर्थात् लक्ष्मी का मिलना और यह विषय, अपवर्ग कहा न ? अर्थ और काम अर्थात वासना, उससे रहित हैं। **`सिद्ध भगवान ऐसी पंचम गति को पाये है।'** आहाहा ! उसके भाव में उसका भासन आना चाहिए कि सिद्धगति ऐसी है, इसप्रकार उसे धर्म, अर्थ और काम से भिन्न... वहाँ पुण्य भी नहीं, विषय वासना नहीं और वहाँ लक्ष्मी नहीं। आहाहा ! उनको ऐसे सिद्ध भगवंतों को पहचान कर कहा है - ऐसा कहते हैं। ऐसे सिद्ध भगवंत ध्रुव, अचल और अनुपम, त्रिवर्ग से भिन्न अपवर्ग। आहाहा ! ऐसी दशा को `स्वभावभाव भूततया' प्राप्त हुये हैं। मैं फिर से कहता हूँ। `उन्हें अपनी और पर की आत्मा में स्थापित करके।' आहाहाहा ! कहूँगा - ऐसा कहा है अर्थात सुननेवाला तो है, तथा कहनेवाले और सुननेवाले दोनों वोच्छामिमें से निकाला और दोनों आत्माओं में सिद्धपना स्थापा है। अनंता-अनंता-अनंता-अनंता सिद्ध अनंता-अनंता सर्वज्ञ अनंता-अनंत अनंत केवलियो। एक केवली की स्वीकृति कठिन (पड़ती है) एक केवली के द्रव्य गुण पर्याय को जाने तब स्वयं के आत्मा को जाने और उसका मोह नष्ट हो जाये। आहाहा ! तो ऐसे अनंत सिद्धों को... आहाहा ! श्रोता के ज्ञान की पर्याय में, राग में नहीं, राग नहीं आहा ! आहाहा ! पर्याय में अनंत सिद्धों को पहचान करके कहता हूँ कि ऐसी पर्याय में मुझे (मैं) स्थापित करता हूँ और सुननेवालों की पर्याय में (भी) स्थापित करता हूँ। आहाहा ! पूरी सेना को खड़ा किया है। स्वयं और सुननेवालों को साथ लेकर एक साथ जानता है आहाहा ! आया है न अंत, अंत अंत में।

यहाँ आखिरमें कहा है न `मज्जन्तु' - पूरा लोक आकर... आता है न ? अंतिम कलश - जीव अधिकारका - पूरा लोक आ जाओ, कोई बाकी नहीं, आहाहा ! ऐसे इधर सुननेवाला भी - ऐसा हो वह जीव भी। आहाहा ! सिद्धपदको उसकी पर्यायमें स्थापित करता हूँ अतः उसका लक्ष्य भी द्रव्य ऊपर रहेगा और हमारी बात सुनेगा तो उसकी शुद्धि हो जायेगी, आहाहाहा ! - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

उनको अपनी और दूसरों की आत्मा में स्थापित करके, आहाहा ! `समय का- सर्व पदार्थों का अथवा जीव पदार्थ का प्रकाशक... - ऐसा।' `वोच्छामि' समय शब्द आया था न ? `वोच्छामि समयपाहुड़म्' अब उसकी व्याख्या करते हैं, फिर श्रुत केवली की करेंगे; समय नाम सभी पदार्थों का अथवा जीव पदार्थ का प्रकाशक - ऐसा प्राभृत नामका अर्हत्प्रवचन का अंश है यह तो, आहाहा ! भगवान की वाणी, अरहंत

की वाणी त्रिलोकनाथ, जिनेश्वर, परमेश्वर उनकी जो वाणी उसका यह अंश है। कहते हैं कि पूरा तो हमारे पास कहाँ है, आहाहा ! अर्हत्प्रवचन, अर्हत, अरहंत - ऐसा नहीं लिया, जिनको कुछ शेष नहीं ऐसे पूरण जाननेवालों के प्रवचनका, पूरा जाननेवालों के प्रवचन, आहाहा ! एक अंश है यह, यह तो अवयव है आहाहाहा !

`अनादिकाल से उत्पन्न हुये अपने और दूसरों के मोह के नाश के लिए...' आहाहाहा ! अहो..... `भव्य जीवो' - ऐसा कहकर, मैं मोह के नाश के लिये कहता हूँ। आहाहा ! ***हममें भी थोड़ा अस्थिरता का अंश है उसका भी नाश होगा और श्रोताओं को भी मिथ्यात्व और अव्रत का नाश करने के लिये मैं यह कहूँगा।*** आहाहाहा ! अनादिकाल से उत्पन्न हुआ हमारा और पर का मोह... भाई मुनि को मोह होता नहीं न। यह अस्थिरताका कहा है न ! स्वयं कहा है न ! अमृतचन्द्राचार्यने (कहा कि) कल्माषिताया अनादि का अशुद्धता का अंश है वह बाधक है, उसके नाश के लिये हमारी यह टीका है। आहाहा ! इस अशुद्धता से मुझे निर्मलता होगी - ऐसा नहीं, (परंतु) अशुद्धता के समय (स्वभाव की ओर झुकते-झुकते) हमारा लक्ष्य ध्रुव ऊपर विशेष जाता है, जिससे अशुद्धता का नाश होगा आहाहाहा !

यहाँ भी कहते हैं अपने और दूसरों के मोह के नाश के लिये, क्या कहते हैं आचार्य कुन्दकुन्द `मैं परिभाषण करता हूँ' स्वयं के मोह और दूसरों के मोह के नाश के लिये यह परिभाषण करता हूँ... आहाहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! वोच्छामि है न ? वक्ष्यामि, वोच्छामिमें से वक्ष्यामिमें से यह सब निकाला (कहा) परिभाषण निकाला उसमें से।

वक्षामि - ऐसा है न ? मैं कहूँगा ? क्या कहूँगा ? अर्थात जिस-जिस स्थान पर जिसकी जरूरत है वहाँ वहाँ वह भाव आयेंगे, गाथा रचना अक्षरों से होगी, आहाहा ! ऐसे परिभाषण (कथन) को मैं कहूँगा। आहाहा ! अपना और दूसरों के (मोह) नाश के लिये यह सिद्धांत है, यह मैं कहूँगा, परंतु थोड़ी हमारी भी अशुद्धता है, उसके नाश के लिये और श्रोताओं के भी मोह के नाश के लिये मैं यह कहूँगा। आहाहाहाहा ! जोर तो कितना है देखो न !! सिद्धों को नीचे उतारा है, प्रभु आप ऊपर और हम यहाँ नीचे, तुम जरा यहाँ आओ फिर मैं भी आपके पास आऊँगा, आपके पास वहाँ ऊपर। आहाहा ! हमारी पर्याय में आप पधारो फिर मैं आप जहाँ हो वहाँ आऊँगा। आहाहा ! कहते हैं कि अपनी पर्याय में मोह के नाश के लिये आपको स्थापित किया है आहाहा ! अपने आत्मा में और श्रोताओं के आत्मा में मोह के नाश के लिये मैं कहूँगा (अर्थात कि) इसके लिये यह परिभाषण किया है - ऐसा आया था न ! आहाहाहाहा ! क्या ! (महिमा) कुन्दकुन्दाचार्य की और क्या। (महिमा) उनकी

वाणी की एक एक अक्षर में कितना मर्म भरा है। आहाहा ! श्वेतांबर में तो - ऐसा कहते हैं `संयमे आवशत भगवताया' भगवान ने - ऐसा कहा है, मैं कहूँगा। यहाँ तो कहते हैं मैं कहूँगा, भगवान के पास से सुना है परंतु कहनेवाला मैं हूँ अभी। आहाहा ! और मैं अपने वैभव से कहूँगा। आहाहाहा ! मुझे प्रगट हुयी (जो) दशा उससे समयप्राभृत को मैं कहूँगा, आहाहा ! यह प्रवचन का अवयव है। आहाहा !

मैं परिभाषण करता हूँ, आहाहा ! वहाँ भी लोग तर्क करते हैं देखो परिभाषण करता हूँ, कथन करता हूँ (आखिर ... तो आया ?)) परंतु दूसरा क्या आये ? व्यवहार में किस प्रकार आये ? वाणी वाणी के कारण निकलती है, परंतु वाणी में जो कहने का आशय है, ज्ञान में निमित्त है, इससे - ऐसा कहने में आया कि मैं कहूँगा। क्योंकि ज्ञान में पहले - ऐसा आया, कि ज्ञान का जो स्वभाव है हमारा, उससे मैं कहूँगा। है न ? आहाहा ! भावश्रुत से कहूँगा। आहाहा ! हमारे स्वभाव में भी सिद्धपद को स्थापा और दूसरों में भी स्थापा, और अब मैं मोह के नाश के लिये... मोह (शब्द) समुच्चय प्रयोग किया है। अर्थात स्वयं को कहीं दर्शनमोह नहीं (परंतु) श्रोता को दर्शन मोह चारित्र मोह दोनों हो सकते हैं, परंतु हमारे और तुम्हारे इन सभी के मोह नाश के लिये यह कहते हैं, राग को रखने के लिये नहीं। भले ही हम कहें और तुम्हें प्रेम आये और शुभ राग आये परंतु राग रखने के लिये यह कथन नहीं। आहाहाहा !

कारण कि यहाँ तो वीतरागता का वर्णन करना है, और चारों अनुयोगों के कथन का सार वीतरागता है। पंचास्तिकाय की १७२वीं गाथा में आता है, चारों अनुयोगों का सार वीतरागता है। इस अनुयोग में - ऐसा है और इस अनुयोग में - ऐसा है - ऐसा नहीं। चारों अनुयोगों का सार वीतरागता है इसका अर्थ यह हुआ कि चारों अनुयोगों का कहने का आशय स्वद्रव्य का आश्रय करना है कि जिससे वीतरागता प्रगटे। आहाहा ! चारों अनुयोग चाहे तो चरणानुयोग हो, करणानुयोग हो, कथानुयोग हो। प्रभु तो - ऐसा कहें अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य चारों अनुयोगों का सार शास्त्रों में शब्दों से कहते आये है। सूत्र तात्पर्य भी पूरे शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है और वह वीतरागता... आहाहा ! प्रगट करने के लिये और इस राग का नाश करने के लिये यह वाणी निकलेगी। आहाहा ! गजब बात है न !!

सहज ही वाणी निकल गई है न। आहाहा ! श्रोता (हमारा भी अहो भाग्य - ऐसा) ऐसी बात है। बात तो सही है। अहो ! सिद्धों के समीप में जाने का मार्ग तो यह है। इसीलिये तो कहेंगे। संसार में कहीं रुकने जैसा है नहीं, (संसार) नाश के लिये कहेंगे। गजब बात है न... ***हमारा कथन जितना आयेगा वह सभी मिथ्यात्व***

और राग द्वेष के नाश के लिये कथन है। कहीं मिथ्यात्व और राग द्वेष को रखूँ- ऐसा कथन होता ही नहीं क्योंकि यह तो वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोक नाथ से सुना है और उसीप्रकार परिणमन हो गया है। आहाहाहा ! और श्रुतकेवली के पास से चर्चा करके हमें परिणमन हुआ है। हम पंचमकाल के साधु अतः हमारी वाणी साधारण है, और उसका फल साधारण है - ऐसा नहीं समझो आहाहा ! पण्डितजी ?

यह तो अंदर का भाव, आहाहा ! मक्खन भरा है न मक्खन। `**आहाहा ! कैसा है वह अर्हत प्रवचन का अवयव' आहाहा ! यह समयसार** (**ग्रंथ**) **कैसा है ?** कि `**अनादि निधन परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से**' आहाहा ! प्रथम तो उत्पन्न हुये मोह के नाश के लिये (कहा) अब मैं परिभाषण करता हूँ। कैसा है प्रवचन ? कि अनादि अनंत - ऐसा परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से। आहाहाहा ! अनादि-अनंत - ऐसा, परमागम - ऐसा शब्दब्रह्म उससे प्रकाशित हुआ होने से। आहाहा ! वाणी है वह अनादि से निकलती ही है - ऐसा कहते हैं। दिव्यध्वनि अनादि संतों की वाणी, केवलियों की निकलती ही है। अनादिनिधन, अनादि, आदि नहीं और अनिधन, निधन अर्थात अंत नहीं, जिसका अंत नहीं और जिसकी शुरूआत नहीं - ऐसा परमागम शब्दब्रह्म, शब्दब्रह्म है यह, जैसे भगवान आत्मा परमब्रह्म है। आहाहा ! इसीप्रकार यह वाणी भी शब्दब्रह्म है। सर्व व्यापक शब्द पूर्ण सभी बातों को कहनेवाला है। आहाहा ! जैसे भगवान आत्मा परमब्रह्म सर्वज्ञ स्वरूप है उसीप्रकार वाणी भी सर्व का वास्तविक स्वरूप कहनेवाली (भी) शब्दब्रह्म है। आहाहा ! इस शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से। आहाहा ! इसलिये तो प्रकाशित कहा। वाणी, समय प्राभृत कहा है न ! समय प्राभृत कहेंगे -

अब `श्रुतकेवली भणियं' यह चौथापद है उसका अर्थ चलता है। आहाहाहा ! `सर्व पदार्थों के समूह को साक्षात करनेवाली,' सर्व पदार्थों के समूह को साक्षात करनेवाली, समझाना है तो किसप्रकार समझायें ? एक ओर कहें दूसरे पदार्थों को जानना यह असद्भूत है, परंतु यहाँ तो सर्व पदार्थों को साक्षात करनेवाला - ऐसा तो ज्ञान का स्वभाव है। - ऐसा सिद्ध करना है, केवलज्ञानियों का (ज्ञान) आहाहाहा !

सर्व पदार्थों का समूह। आहाहाहा ! अनंतद्रव्यों, अनंतद्रव्यों के अनंतगुण अनंती पर्याय उसका ढेर पड़ा है, सम्पूर्ण लोक में प्रगटरूप में सिद्ध है यह पर्याय की शोभा से प्रगट है। यह सभी पदार्थों में आ जाता है। सर्व पदार्थ के समूह को साक्षात करनेवाले केवली भगवान ! कोई इसमें - ऐसा कहते हैं कि श्रुतकेवली भणियं कहा है उन्होंने दोनों कहाँसे निकाले ? कि दोनों इसमें से निकलते है, नियमसार में दोनों शब्दों को स्पष्ट भिन्न किया है `**केवली**' `**श्रुतकेवली भणियं**' पहला पद है नियमसार में, यह कहने का आशय, इसमें भी यही है। आहाहा !

केवली भगवान - सर्वज्ञ से प्रणीत होने से, आहाहाहा ! प्रतिज्ञा बद्ध !! मैं महाव्रत धारी हूँ मुनि, सत्यव्रतधारी हूँ, यह मैं कहता हूँ। आहाहा ! कि यह अर्हंत का यह प्रवचन, यह साक्षात केवली भगवान के श्रवण से कहा हुआ है। उससे कहा हुआ है। आहाहा ! अन्य साधारण व्यक्तियों को दुःख लगे। श्वेतांबरों के यहाँ यह वाणी है ही नहीं, यह स्थिति ही वहाँ नहीं। सभी कल्पित बातें करके (पंथ) खड़ा किया है वहाँ। बापू क्या हो ? आहाहा ! यहाँ तो सर्वज्ञ भगवान कैसे ? कि सर्व पदार्थों के समूह को साक्षात प्रत्यक्ष करनेवाले, ऐसे सर्वज्ञ से प्रणीत, सर्वज्ञ से प्रणीत निमित्त से कथन है न ? उनसे कहा हुआ होने से, उनसे कहा हुआ होने से एक बात। दूसरी, केवलियों के निकटवर्ती साक्षात सुननेवाले आहाहाहा ! प्रभु के समोशरण में नजदीक में विराजमान श्रुतकेवलियो... ओहोहो ! भगवान की वाणी निकलती है, उनके समोशरण में निकटवर्ती नजदीक सुननेवाले बैठे हैं। आहाहाहा ! निकटवर्ती केवलियों का निकट में रहनेवाले साक्षात सुननेवाले, अन्य जगह कहा होगा, उसे सुनकर... - ऐसा नहीं। आहाहा ! भगवान की सीधी वाणी, समवशरण में सीधा सुननेवाले। आहाहाहा ! उसीप्रकार स्वयं अनुभव करनेवाले भगवान के नजदीक में, भगवान से सीधी वाणी सुनकर, सुनकर और वही अनुभव करके... अकेली सुनी - ऐसा नहीं। आहाहाहा !

यह तो श्रुतकेवली की व्याख्या चलती है। स्वयं अनुभव करनेवाले अपने से अनुभव करनेवाले, दूसरों ने कहा अतः मैं कहता हूँ मानता हूँ - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! अपने स्वरूप से प्रत्यक्ष अनुभव करके जाननेवाले... देखो यह श्रुतकेवलीयों (को)। आहाहा ! यह शास्त्र की प्रमाणिकता स्थापित करते हैं कि यह शास्त्र केवली के श्रीमुख से निकला है और निकटवर्ती श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ है। उन्होंने सुना है और अनुभव किया है, उनसे कहा हुआ यह समयसार है... आहाहाहाहा ! साक्षात सुननेवाले एवं स्वयं अनुभव करनेवाले, भगवान ने वीतराग भाव तो कहा परंतु सुनकर स्वयं वीतरागभाव का अनुभव करनेवाले, वीतरागस्वरूपप्रभु आत्मा तो वीतरागस्वरूप है, द्रव्य जिनस्वरूप है परंतु पर्याय में जिनस्वरूप का अनुभव करनेवाले... आहाहा ! पर्याय में वीतराग भावों का अनुभव करनेवाले... देखो ये संत। आहाहाहा !

ऐसे श्रुतकेवली गणधरदेवों ने कही हुयी होने से। आहाहा ! ऐसी श्रुतकेवली गणधर से कही हुयी है। केवली परमात्मा से कही हुई है, परंतु ऐसी श्रुतकेवली गणधरों से कही हुयी है, कारण कि हमने भगवान को सुना है, और बहुधा तो हमने गणधरों के पास से चर्चा की है। आहाहा ! भगवान से चर्चा होती नहीं, वहाँ तो दिव्यध्वनि निकले। आहाहा ! उसमें से छोटे बड़े संदेह (तथा) शंकायें हो विशेष जानकारी के लिये, आशंका, शंका नहीं अपितु आशंका... यह तो गणधरों और संतों के पास

से हमने सुना है। आहाहा !

'ऐसे श्रुतकेवली गणधर देवों से कही हुयी होने से प्रमाणता को प्राप्त हुयी है।' क्या ? यह अर्हंत प्रवचन का अंश, यह समयसार अर्हंत प्रवचन का एक भाग। वह प्रमाणता को, प्रमाणपने को प्राप्त हुआ है क्योंकि सर्वज्ञ भगवान से सीधा, सर्वपदार्थों के जाननेवालों से सीधा सुना है और श्रुतकेवली (भगवान के) निकटवर्ती जिन्होंने सुना है। आहाहा ! हमेशा रहनेवालों के पास से, हम तो कभी (एकबार) गये हैं, गणधर निकटवर्ती सदा होते हैं। आहाहा ! ऐसे श्रुतकेवलियों और केवली भगवान से कहा हुआ होने से यह समयसार प्रमाणता को प्राप्त हुआ है। आहाहाहाहा ! मैं सिद्धांत को कहूँगा परंतु वह प्रमाणरूप में कैसे है ? कि इसप्रकार है, सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहा हुआ है, आहा ! उनसे कहा हुआ होने से, आहाहाहा ! और निकटवर्ती नित्य सुननेवाले संतों से कहा हुआ होने के कारण, कायम सुननेवालों, नजदीक रहनेवालों के द्वारा कहा हुआ होने से... आहाहा ! भगवान ने कहा वह दूसरों ने सुनाया तथा दूसरों ने तीसरे से कहा इसप्रकार से नहीं, आहाहा ! साक्षात गणधरों तीर्थंकर के पास निकट में रहनेवाले, आहाहाहा ! कितना अस्तित्व सिद्ध करते हैं, और प्रमाणता को किसप्रकार सिद्ध करते हैं। आहाहा ! प्रमाणिकता को प्राप्त हुआ है। आहाहा !

यह सिद्धांत समयसार इस प्रकार सत्यता को प्रमाणता को प्राप्त हुआ है। आहाहा ! उसमें किसी ने लिखा है भगवान की वाणी तो अनंत उसमें से यही वाणी भगवान की है यह किस प्रकार खबर पड़े ? - ऐसा लिखा है, उस श्रमणसूत्र में (८३३ में श्लोक है अंदर) यहाँ है न श्लोक लिखा अंदर कहा है न ? प्रमाणिकता को प्राप्त हुआ है। अनुभव करके सर्वज्ञ से कहा हुआ और केवली से कहा हुआ, तथा हम अनुभव करके कहते हैं (अतः) प्रमाणिकपने को प्राप्त हुआ है ! यह सत्य है दूसरा सत्य नहीं - ऐसा कैसे ? यह ही सत्य है - ऐसा नहीं, कि भगवान ने तो अनंत जाना है न ? वाणी अनंतवे भाग में निकली, इसलिये यही सत्य हैं यह कैसे कहा जा सकता है ? - ऐसा नहीं - ऐसा नहीं प्रभु !! तुम रहने दो भाई ! - ऐसा रहने दो भाई ! आहाहा ! प्रभु ! पोने सोलह आना एक तत्त्व पलटे तो पूरा तत्त्व (पलट) जाता है भाई ! आहाहा ! 'भगवान की वाणी अनंतवे भाग निकली अतः किसी ने कुछ माना किसी ने कुछ जाना अतः इनकी ही वाणी सच्ची - ऐसे कैसे कहना ?' अरे प्रभु तुम रहने दो - ऐसा रहने दो भाई। आहाहा ! आहाहा !

सर्वज्ञ से सीधा सुना है और निकटवर्ती गणधरों से भी हमने सीधा सुना है। आहाहा ! और हम अनुभव करके कहते हैं (तुम भी अनुभव करो) आहाहा ! अभी तो एक गाथा में समयसार (की प्रमाणिकता) सिद्ध करने की कितनी बात कहते हैं

(सत्य वात !) आहाहा ! धन्य भाग्य। आहाहा ! अर्थात आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी है - ऐसा जिन्होंने सर्वज्ञ स्वभाव प्रगट किया है... उनके द्वारा कहा हुआ है और सर्वज्ञ स्वभावी माननेवाले भी छद्मस्थ श्रुतकेवलियों, उन्होंने भगवान के पास से नजदीक रहकर सुना है, एक ने कहा और दूसरे ने उससे कहा - इसप्रकार नहीं। साक्षात भगवान की वाणी सीधी कान में पड़ी है। आहाहाहाहा ! (बराबर) आहाहा !

यह तो अभी समयसार कहेंगे, पहली गाथा (है) और निराभिमानता तो देखो उनकी। आहाहा ! भगवान के द्वारा कहा हुआ है बापू। श्रुतकेवली के द्वारा कही हुई है वह कहेंगे। आहाहा ! फिर कहेंगे कि अपने वैभव से कहेंगे। परंतु यहाँ अभी इतना विनय स्थापित करते हैं कितनी विनय की स्थापना करते है। आहाहा ! मैं कहूँगा इसलिये प्रमाण है - ऐसा पहले नहीं कहा, यहाँ। आहाहाहाहा ! यहाँ सर्वज्ञप्रभु की अस्ति स्थापित की और उन सर्वज्ञ को वाणीवाला स्थापित किया, शरीरवाला स्थापित किया, सिद्ध (भगवान) नहीं, सिद्ध नहीं। वाणीवाले अर्थात अरहंत को स्थापित किया कि जिनको वाणी है, आहाहा ! प्रणीत - ऐसा कहा है न ? प्रणीत आहाहाहा ! `प्रणीत' है देखो न। सर्वज्ञ से प्रणीत वाणी है, सर्वज्ञ तो सिद्ध भी हैं, परंतु उन्हें वाणी नहीं। यह तो अरहंत सर्वज्ञ से प्रणीत वाणी है। आहाहाहाहाहा !

और - ऐसा भी सिद्ध किया, जैसे सिद्ध अनंत हुये इसीप्रकार सर्वज्ञ (अरहंत) भी हैं, बाद में शरीर रहित होंगे, परंतु यह सर्वज्ञ हैं, तो कहीं है या नहीं जैसे शरीर रहित सिद्ध हुये वह किसी क्षेत्र में है कि नहीं अर्थात यह ऊपर है। तब जिनको अभी वाणी है और सिद्ध नहीं हुये तथा सर्वज्ञ हुये हैं तो उनकी कोई स्थिति है कोई क्षेत्र है कि नहीं ? आहाहाहा ! बहुत समाया है। क्षेत्र सिद्ध करते हैं, भगवान महाविदेह में विराजते हैं। आहाहा !

जहाँ वाणी निकलती है उनके पास से यह बात आयी है। आहाहा ! यहाँ तो जब कुछ बोलना आया तब उसे (गर्व) हो जाये... जो मैं समयसार कहूँगा फिर भी वह तो भगवान के पास से सुना है और निकटवर्ती गणधरों के पास (उनके) साथ चर्चा करके निश्चित किया है। आहाहा !

और पांचमी गाथा में - ऐसा आया न कि हमारे गुरु ने हमको अनुग्रह करके शुद्धात्मा का उपदेश दिया (है) आहाहा ! वहाँ गुरु को लिया आहाहा ! हमको हमारे गुरु ने अनुग्रह मेहरबानी करके... हम पात्र थे इसलिये (उपदेश) दिया - ऐसा नहीं लिया, उनकी कृपा से हमें शुद्धात्मा का उपदेश मिला (है)। आहाहा ! उस वैभव से मैं कहूँगा, वहाँ - ऐसा कहेंगे; यहाँ तो अभी शुरूआत करते हैं न ? (बहुत माल निकाला साहब आपने) है कि नहीं, इसमें पण्डितजी ? दो पण्डित बैठे हैं सामने,

जिज्ञासा लेकर बैठे हैं, आखिर वहाँ से आये हैं न ? आहाहा !

अन्यवादियों के आगम की तरह अल्पज्ञानियों की कल्पना मात्र नहीं। आहा ! इसके अलावा दूसरा जो कहा हुआ है... आहाहाहा ! कठिन लगे ! दूसरों को दुःख लगे बापा ! तुम भी भगवान हो भाई !

अन्यवादियों के आगम की भांति अल्पज्ञ की कल्पना (नही)... उन्होंने तो कल्पना से आगम रचा है... देखा नहीं, जाना नहीं जगत का स्वरूप, सर्वपदार्थों का स्वरूप जाना नहीं, जाने बिना कल्पना से शास्त्र बनाये हैं, वह प्रमाणभूत नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है।

दिगम्बर संतो ! राग से मर गए हैं। आहाहा ! अरे ! अकेली निर्मान दशासे कहते हैं मैं भगवान के पास से सुना हुआ कहूँगा और निकटवर्ती गणधरों... गणधरों के निकटवर्ती वर्तनवाले (श्रुतकेवली आदि) उनके द्वारा कहा हुआ कहूँगा। परंतु प्रभु तुम यहाँ हो, वहाँ तो गणधर और भगवान यहाँ नहीं थे न ? सुनो-सुनो कुन्दकुन्दाचार्य तो (गये) थे परंतु अमृतचन्द्राचार्य टीकाकार कहते हैं, मैं इस प्रकार कहूँगा। पण्डितजी ! (श्रोता :- कानजी स्वामी भी कहते हैं कि मैं भी कहता हूँ) आहाहा !

अमृतचन्द्राचार्य तो नहीं गये थे। गये थे, गये थे प्रभु सुनो तुम। आहाहाहा ! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो वहाँ गये थे सर्वबात उनकी सच्ची, अब उसमें शंका करते लोग, कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे उसका आधार क्या है ? ऐसी शंका ! अरे प्रभु - ऐसा न कहो भाई, हित के पंथ में ऐसी शंका न हो प्रभु ! आहाहा ! बाहर की बड़ाई जगत को मार डालेगी बापा। आहाहा ! यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि कल्पना से आगम बनाया - ऐसा कहके, सभीको रखा है। दिगम्बर सिद्धांत सिवाय अन्य सभी ने कल्पना से बनाये (रचे) हैं, यह (दिगम्बरग्रंथ) अप्रमाण हों - ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं इसलिये (अन्य जैसा) अप्रमाण हो, वह इसमें नहीं। आहाहा ! (- ऐसा वह लोग कहते हैं) विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)